REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 3 | DECEMBER - 2018

महादेवी के काव्य में गीतितत्व

डॉ. सुमित सिंह
Assistant Professor, Jawaharlal Nehru College,
Wadi, Nagpur .

वेदना एवं उल्लास के अतिरेक से मानव–हत्तन्त्री स्पन्दित होकर जो स्वर–विधान करती है, वह गीति–काव्य की संज्ञा प्राप्त करता है । हर्ष–विषाद, सुख–दु:ख, प्रसन्नता–पीडा तथा मिलन–वियोग का उल्लास एवं वेदना जब हृदय की सहनशक्ति की सीमा का उल्लंघन कर जाते है, तो उनका प्रस्फुटन यया तो आनन्द के मुक्ताकणगों या व्यथा के श्रश्रुओं या गीतिभय स्वर–लहरी के रुप में होता है । यदि ऐसा न हो तो वह विदीर्ग हो जाये, उसकी गति बन्द हो जाये और मानव अभिव्यक्ति की शक्ति सदा के लिए खो बैठे । मानव अभिव्यक्ति की शक्ति सदा के लिए खो बैठे । अत: गीतिकाव्य या गीत उसके हृदय को हर्ष एवं विषाद के क्षरगों मं ऐसी क्षमता प्रदान करता है कि वह अन्य मानवो को समानभागी बनाकर हलका हो जाता है ।

गीति का उद्‌गार स्वाभाविक है । मनोवेगो या भावों की तीव्रता स्वत: ही गीति के रुप में प्रभावित होकर मानस–लहरी को कण्ठ के द्वारा अंधरों पर चिरकने लगती है । अत: उसमें वैयक्तिकता का एकान्तिकता का भाव पाया जाता है । महादेवी वर्मा ने लिखा है – ''साधारणत: गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख–दु:खात्मक अनुभूति का वह शब्द रुप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गये हो सके ।'' विशेषत: लोकगीत तो जनमानस के सुख–दु:ख, आशा–निराशा, घृणा–प्रेम, व्यथा–उल्लास एवं संयोग–वियोग के भावों के प्रतिबिम्ब होते है । उनमें जहॉ जीवन के मादक उललास की मनमोहक व्यंजना होती है, वहॉ जीवन की विषम घडियों में प्रवाहित श्रश्रुधारा भी छलकती है । साहित्यिक गीत उसी प्रेरणा का परिष्कृत रुप है । भाव गीतिकाव्य के रुप में स्वत: ही नि:सृत होता है, वह प्रयत्न का परिणाम नही । इसीसे गितीकाव्य में भावाकुलता, मार्मिकता एवं प्रेषणीयता होती है । एक ही भाव या आवेग अपनी तीव्रता या उद्‌दामता के कारण गीति के रुप में व्यक्त होता है । अत: उसमें संक्षिप्तता एवं एकनिष्ठता पाई जाती है । इस प्रकार गीतिकाव्य के निम्नलिखित तत्व माने जा सकते है–(१) आत्माभिव्यक्ति, (२) गेयता या संगीतात्मकता, (३) भावाकुलता, (४) भावान्विति या अनुभूति की एकता, (५) संक्षिप्तता, (६) भावानुकूल भाषा ।

आत्माभिव्यक्ति –

गीतिकाव्य में कवि अपने 'आत्म' की अभिव्यक्ति करता है । उसकी अनुभूति स्वत: ही काव्य के रुप नि:सृत हो उठती है । श्रतएव स्वानुभूति गीतिकाव्य में कवि का व्यक्तित्व उध्दासित हो उठता है । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का भी कथन है–''प्रगीत में ही कवि का व्यक्तित्व पूरी तरह प्रतिबिम्बित होता है– वह कवि की सच्ची आत्माभिव्यंजना होती है । कवि अंन्तस्तल का उद्‌घाटन प्रगीत में ही सम्भव है ।'' महादेवी वर्मा का करुणापूर्ण व्यक्तित्व उनके गीतों मे सफलता के साथ व्यक्त हुआ है । बाहय–जीवन में उनके हृदय की जो करुणा दोनों और असहायों के प्रति दया, ममता और सेवा के रुप में नि:सृत होती दृष्टि गत होती है, वही उनके गीतों में आत्मा का रस बन कर प्रसवित हुई है । उस करुणा

का कारण कुछ भी रहा हो, किन्तु वास्तव में वह प्रियतम के विरह से उद्‌भूत पीडा का प्रतिफलन प्रतीत होती है । इसी कारण कवियित्री अपने को विरह का जलजात बताती हुई कहती है—

''विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात ।
वेदना में जन्म, करुणा में मिला आवास ।
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात ।
जीवन विरह का जलजात ।।''

इस विरह—जन्य पीडी ने कवयित्री को करुणा की प्रतिमूर्ति बना दिया है और वह करुणा ऐसी है, जो मुक्त—हृदय से सब के लिए बरसती है तथा 'सुख की सिहरन' बनकर खिल उठती है । अपने परिचय में इसी भाव की व्यंजना करते हुए वे कहती है :—

''मै नीर भरी दुख की बदली ।
विस्तृत नभ का कोना—कोना,
मेरा न कभी अपना होता ।
परिचय इतना इतिहास यही,
उमडी कल थी मिट आज चली ।।''

उनकी यह करुणा बौध्द—दर्शन की प्रभविष्णुता पाकर भव्यतर हो गई है ।

प्रियतम की चिवन ने पीडा का जो साम्राज्य कवयित्री को दिया है, उसे उसने अपनी आत्मा में बसा लिया है अथवा यों कहें कि पीडा उनके प्रियतम का ही प्रति रुप हो गई है । इसीलिए वे प्रियतम को पीडा में और प्रियतम में पीडा को खोजती हैं—''तुम को पीडा मं ढूँढा, तुम में ढुँढुँगी पीडा ।'' जब तक पीडा है, तब तक ही प्रियतम के पथ को आलोकित करता हुआ उसका जीवन—दीप मधुर—मधुर जलता है । अतृप्ति, अभाव, वेदना और अवसाद ही तो प्रियतम की और निरत्तर प्रेरित करते है । अत: ये जीवन के वरदान है । तभी कवियित्री को ये प्रिय है । वे इनमें ही आनन्द का स्त्रोत पाती है । इसी कारण उन्हें अपनी साधना की परिणति के रुप में अमरों का लोक भी नही चाहिए । तभी वे कहती है :—

''ऐसा तेरा लोक, वेदना नही, नही जिसमें अवसाद । जलना जाना नही, नही जिसने जाना मिटने का स्वाद ।। क्या अमरों का लोक मिलेगा तेरी करुणा का उपहार । रहने दो हे देव ! अरे यह मेरा मिटने का अधिकार ।।

क्योंकि उसमें जीवन निष्क्रिय, पंगु या जड बन जायेगा तथा प्रियतम की प्रतीक्षा में जो आनन्द है, उसके विरह की जलन में जो मिठास है, उसके मिलन की ललक मं जो उत्साह है, वह समाप्त जो जाएगा तथा जीवन भावहीन एवं निस्सार बन जायेगा । इसी से उनका कहना है—''मिलन का मत नाम ले मै विरह में चिर हूँ ।'' उन्हें विरह में ही मिलन की मधुमय कल्पनाएँ सुझती है, जिनमें विभोर होती हुई वे एकाकी और अपरिचित पंथ पर भी 'मोतियों की हाट' और 'चिनगारियों का मेला'' लगाती हुई चल सकती है । यदि इस पटिल पंथ में जीवन—दीप बुक्त भी जाय, तो भी उन्हें चिन्ता नही है । वे कहती है :— ''चिन्ता क्या है हे निर्मम ! बुक्त जाये दीपक मेरा । हो जायेगा तेरा ही पीडा का राज्य अंधेरा ।।''

जिस पीडा के राज्य को प्रकाशित करने की उन्हें चिन्ता है, उसकी और किसे होगी, वे अपने 'सूनेपन की मतवाली रानी' है तथा 'प्राणो का दीप जलाकर दिवाली' करती रहती है । इसीलिए यह सूनापन, यह विरह यह अतृप्ति और यह अभाव उन्हें प्रिय है । वे इस करुगा, अभाव में ही चिरतृप्ति देखती है, जीवन का लघु क्षण उन्हें निर्माण के शत—शत वरदान सा प्रतीत होता है और वेदना के क्रम में वे हृदय में प्रियतम का मुर आभास पाती है । यह विरह की पीडा होती है, जो उन्हें मुसकराते हुए संकेत भरे नभ मे प्रियतम के आगमन का आभास देती है, यह विरह की पीडा ही तो उनके हृदय में यह कामना जागती है :—

''जो तुम आ जाते एक बार ।

कितना करुगा, कितने संदेश,
पथ में बिछ, जाते — बन पराग ।
गीता प्राणों का तार—तार,
अनुराग भरा उन्माद राग ।
ऑसू लेते वे पद परवार ।''

इसीलिए उन्हें विरह और उसकी पीडा प्रिय है । यही उनका जीवन है और यही उनका प्रिय है । इस प्रकार उनके गीतों में उनका पीडा मय 'आत्म' भली भौति व्यक्त हुआ है ।

रहस्यवाद की सरणियों पर अग्रसर होते हुए भी कवयित्री के गीत उनके 'आत्म—भाव' का ही प्रतिबिम्ब है । प्रियतम के साथ अंश और अंशी का सम्बन्ध स्थापित करते हुए जब वे उन्हे 'विधु का बिम्ब' और स्वयं को 'मुग्धारशिम अजान' कहती है अथवा 'आत्म' की सर्वत्र व्याप्ति देखती हुई जब वे 'पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी, अधर भी हूँ और स्मित की चॉदनी भी हूँ' की घोषणा करती है, तब उनके गीत उनकी साधिका—अवस्था को अभिव्यक्ति देते है । अपने हृदय में ही प्रियतम की ज्योति का आभास पाकर जब वे कहती है :—

''तुम मुक्त में प्रिय फिर परिचय क्या ?
चित्रित तू मै हूँ रेख—क्रम,
मधुर—राग तू मैं स्वर संगम ।
तु असीम में सीमा का भ्रम,
काया—छाया मे रहस्यमय ।'
प्रेयसि—प्रियतम का अभिनय क्या ?'

तो हम उन्हें प्रियतम में एकाकार होती हुई पाते है । 'आत्म' में ही 'परमात्म' की यह अनुभूति कवीयित्री के अन्तस के चरम विकास की अभिव्यक्ति है । उनके गीतों में सर्वत्र उनका अन्जगत छलकता दृष्टिगत होता है । उन्होंने स्वयं कहा है— ''बाहय जीवन की कठोरता, संघर्ष, जय, पराजय सब मूल्यवान है, पर अन्तर्जगत् की कल्पना, स्वप्न, भावना आदि भी कम अनमोल नही ।'' अपने इसी अन्तर्जगत को उन्होंने अपने गीतों मे वाणी प्रदान की है ।

गेयता या संगीतात्मकता —

गीतिकाव्य का हृदय वीणा से स्वाभाविक उद्रेक होता है । अत: गेयता उसका अनिवार्य तत्व है । यह आवश्यक नही कि उसमें शास्त्रीय संगीत की सैध्दान्तिकता का आग्रह हो । हृदय के तारों की स्वाभाविक संस्कृति ही ऐसा स्वर विधान करती है ि कवह स्वत: ही गेय हो जाता है । काव्य में भाव—व्यंजना के लिए शब्द—साधना अपेक्षित है । अर्थ—गर्भित शब्द ही भाव—विधान में समर्थ होता है, किन्तु गीतिकाव्य में शब्द—साधना के साथ—साथ स्वर—साधना भी अनिवार्य है । संगीत में केवल स्वर के आरोह—अवरोह द्वारा भावानुभूति कराई जा सकती है । महादेवी के गीतिकाव्य की यह विशेषता है कि उसमें काव्य का अर्थ—गाम्भीर्य और संगीत का स्वर माधुर्य सन्तुलित रुप से समन्वित है । भावना का तीव्रवेग होने के कारण उनके गीतों में जहॉ साहित्यिक सौष्ठव है, वहॉ संगीत का तरल प्रवाह भी है । महादेवजी ने स्वंय कहा है — ''काव्य का वही अंश गेय कहा जायेगा, जो अनुभूति की तीव्रता को संगीत के लिए उपयुक्त शब्द—संयोजन द्वारा व्यक्त कर सके ।'' उपयुक्त शब्द—संयोजन से तात्पर्य ध्वन्यात्मकता में गेय होने से ही है । महादेवीजी का ही ऐसा व्यक्तित्व है, जिसमें कवि, चित्रकर और संगीतज्ञ का एक साथ संगम है । उन्होनें शास्त्रीय संगीत का ज्ञान होते हुए भी अपने गीतों में संगीत की अपेक्षा काव्य को ही प्रधानता दी है और उनका काव्य विशिष्ट शब्द — संयोजन के कारण गेय है । भावों के अनकूल गीतों की गति और उनका आरोह—प्रचुर उन्हें संगीतात्मकता प्रदान करता है । यथा—''मधुर—मधुर मेरे दीपक जल ।

युग—युग, प्रतिदिन, प्रति क्षण, प्रति पल प्रियतम का पथ आलोकित कर यहाँ शब्दों की आवृत्ति और लघु वर्णो के प्रयोग ने काल की लघुता को क्रमशः युग—युग तक विस्तृत करते हुये गीत को गति प्रदान की है । सङ्गीत में प्रायः 'टेक' के अनन्तर 'अन्तरा' होता है, जो क्रमशः गति को आरोह प्रदान करता है । 'टेक' की आवृत्ति सङ्गीत को मधुर बनाती है । महादेवी के अनेक गीतों में यह विशेषता दृष्टिगत होती है :—

''क्या पूजा क्या अर्जन रे ।
इस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे''

इस गीत में 'रे' की प्रत्येक पंक्ति में आवृत्ति नें संगीत का माधुर्य भर दिया है । उनके 'बीन भी हूँ मै तुम्हारी रागिनी भी हूँ, 'शलभ में शापमय वर हूँ, किसी का दीप निष्ठुर हूँ', 'मुस्काता संकेतभरा नभ अलि क्या प्रिय आने वाले है', 'जो तुम आ जाते एक बार' इत्यादि अनेक गीत गायकों की वाणी का श्रृगांर है — काव्य और संगीत का ऐसा माधुर्य आधुनिक कवियों में निराला के अतिरिक्त किसी में नही है । डॉ. चिनयमोहन शर्मा का तो यह मतहै — ''प्रसाद के गीतों में भाव—प्रवणता, निराला के गीतों में चिन्तन और महादेवी के गीतों में दोनों का समावेश है ।''

भावाकुलता —

गीतिकाव्य, तीव्र भावावेग की स्वाभाविक परिणति है । यह हृदय से निकलकर हृदय को प्रभावित करती है । अतएवं चिन्तन—मनन, इतिवृत्त एवं सिध्दान्त—निरुपण के लिए उसमें स्थान नही है । उसमें भावना का अविरल प्रवाह अपेक्षित है । डॉ. नगेन्द्र कहते है — ''जब कभी आत्मा भाव की अग्नि से पिघलकर बहने को हुई है, उसके ताप से वाणी भी द्रवीभूत हो गई है और भाव ने गीत का रुप धारण कर लिया है । अतएव जब—जब हमारा जीवन—दर्शन व्यक्तिपरक अथवा भावपरक हुआ है, काव्य में गीति का महत्व बढ गया है ।'' महादेवी का समस्त काव्य ही व्यक्तिपरक अथवा भावपरक है, इसी समस्त काव्य ही व्यक्तिपरक अथवा भावपरक है, इसी कारण उनकी अभिव्यक्ति गीतिमय हुई है । फिर भी महादेवी के गीतों की भाव—गरिमा के सम्बन्ध में मतैक्य नही है । एक और श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त कहते है — ''महादेवी की कविता भावना—प्रधान और कल्पना प्रधान है । कोई निर्मम बुध्दिवाद इस काव्य की पटभूमि नही ।'' दूसरी और श्री लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' का कथन है, ''कवियित्री की दृष्टि केवल कला की चमत्कार सृष्टि पर ही शेष है, भावना पीछे ही कही छूट गई । गीतिकार की रचना में शासन भाव का होना चाहिए, बुध्दि का नही ।'' इसका तात्पर्य यह है कि प्रवासीजी महादेवी के अप्रस्तुत—विधान को बुध्दि—व्यायाम मानते है, स्वाभाविक नही । वस्तुतः यह प्रवासीजी की भ्रान्ति है । वे महादेवी के अप्रस्तुत विधान के कलापूर्ण चमत्कार से ही इतने आक्रान्त हा गये है कि उसमें निहित भावधारा में अवगाहन करने का उन्हें अवकाश ही नही मिला है । जिस कवचित्री के काव्य में उस करुणा की अजस्त्र धारा प्रवाहित है, जिसके सम्बन्ध में भवभूति ने यहाँ तक कह दिया है 'एकोरसः करुणा एव' वहाँ भावना का अभाव देखना कुछ समझ में नही आता । महादेवीजी की तो यह विशेषता है कि उनका भाव कला—सौन्दर्य से और भी निखर उठा है । यदि कला के कारण भावोन्मेष में सन्देह किया जाये, तो तुलसी की 'विनय पत्रिका' ने अनेक भावपूर्ण सुन्दर पद गीतिकाव्य से बहिष्कृत करने पडेंगे । महादेवी और तुलसी में अन्तर केवल इतना है कि महादेवी का प्रियतम अव्यक्त है और तुलसी के आराध्य व्यक्त राम, किन्तु जो निष्ठा, जो आत्म समर्पण तुलसी में है वही महादेवी में भी है । इसीलिए भावना का जैसा तीव्र वेग तुलसी में है, वैसा ही महादेवी में भी है । डॉ. सचिदान्नंद तिवारी ने ठीक ही लिखा है — ''जिसमें अपने परमप्रिया के प्रति जितनी ही निष्ठा है, उसकी भावना उतनी ही बलवती है और चूँकि महादेवी ने अपने सम्पूर्ण कवित्व का उपयोग अपने रहस्यमय आराध्य की अर्चना में ही कर दिया है, इसलिए उनके समान भावावेश अन्यत्र नही उपलब्ध होता ।'' श्रीप्रवासीजी ने महादेवी के दो गीतों के अंशो को लेकर 'अपने मत की पृष्टि की है । एक पद यह है —

''प्रिय ! सान्ध्य—गगन मेरा जीवन ।
यह क्षितिज बना धुँधला विराग
नव अरुण—अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन ।।''

इस सम्बन्ध में प्रवासीजी की व्याख्या है — ''ये अप्रस्तुत काफी मानसिक या बौध्दिक व्यायाम की अपेक्षा रखते है । यहाँ अन्तिम पंक्ति में आये प्रस्तुत और अप्रस्तुत पर थोड विचार कीजिए । काया है प्रस्तुत और छाया है अप्रस्तुत । साधारण धर्म कहा गया है 'वीतरागता' को । वीतराग धर्म है मन का, काया का नही । काया में राग कहाँ ! वह तो मन में होता । इसी प्रकार प्रथम चरण में अप्रस्तुत क्षितिज का साधरण धर्म धुँधलापन अवश्य है, किंतु विराग में धुँधलापन कहाँ? वह तो स्वच्छ, निर्मल और निर्लेप होता है ।'' हमारा निवेदन है कि कवियित्री ने अपने जीवन को सान्ध्य गगन कहा है, जिसमें एक और वातावरण की धूमिलता, छाया का अभाव या उपेक्षा होती है, दुसरी और अरुणिमा और बादलों की रंगीनी भी है । कवित्रियी का जीवन भी ठीक वैसा ही है । छाया के प्रति जैसे किसी का राग नही होता, उसके प्रति मन वीतराग होता है' उसी प्रकार कवयित्री को काया से मोह नही है, वह अपने सौभाग्य की अरुणिमा और स्मृतियों से रस्त्रित कल्पनाओं में मग्न है । उसका विराग अभी वास्तव में धुँधला या अपुर्ण ही है । यदि वह धुँला नही होता, तो मिलन की ज्योत्स्ना विकीर्ण हो जाती, फिर जीवन सान्ध्य गगन नही रहता । कवयित्री ने अपने जीवन की बहिर्गत उदासीनता और अन्तर के प्रेम — जनित उल्लास की एक साथ व्यंजना की है । भाव को इस अप्रस्तुत योजना से उसने मूर्त कर दिया है । अतएवं प्रवासीजी को अपनी पूर्व स्वीकृति को ही मान्यता देनी चाहिए — ''महादेवीजी की यह विशेषता है कि भावलीनता के क्षणों से भी कला उनका साथ नही छोडती ।''

उनके रहस्यवादी गीत जिमें चिन्तन भी है, भाव—भूमि पर ही आधारित है । उनका चिन्तन भावाश्रित है । अव्यक्त प्रियतम बुध्दि का विषय न होकर भाव का आधार बन गया है । हृदय में स्थित प्रियतम भी पूजा का पात्र बन गया तथा विभिन्न अनुभाव पूजा के उपकरण है, जो भावना की तीव्रता को प्रमाणित करत है । उनमें निहित भावना का स्वाभाविक उद्रेक सामान्य घरातल पर आकर ही हुआ है । स्वयं महादेवीजी कहती है : ''मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोकगीतों की धरती पर पले है ।'' जिसका तात्पर्य यह है कि उनका प्रियतम, जो उनकी भावना का सम्बल है,अमूर्त अवश्य है, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति सामान्य ही है, जिसमें प्रेषणीयता का गुण है ।

भावन्वित —

गीतिकाव्य भाव की प्रवेगपूर्ण स्थिति का परिणाम है । उसमें मंथरता नही, उत्तेजना होती है । अतएव गीत में एक भाव अपनी पूर्ण मार्मिकता के साथ अभिव्यक्ति पाता है । प्राय: मूलभाव प्रथम पंक्ति में केन्द्रित होता है तथा शेष गीत में उसी का पल्लवन किया जाता है । भाव की एक निष्ठता, केन्द्रीयता और संकुचित सीमा उसे तीर की भाँति तीखा बनाती है ।

म्हादेवी के गीतों में भी भावान्विति का अभाव नही है । उनके गीतों में करुणा, वेदना, आशा, जिज्ञासा, आत्मनिवेदन जो भी भाव आया है, समग्र गीत में उसी का पल्लवन हुआ है । लकिन डॉ. विनयमोहन शर्मा का मतह[ै] — ''महादेवीजी के गीतों में भावों की विच्छिन्नता पाई जाती है । उनका एक गीत एक ही भाव की पूर्ण परिणति नही होता । उसमें कई भाव फलक उठते है ।'' शर्माजी का यह कथन अंशत: सत्य है । किन्तु जो अनेक भाव आते भी है, उनका स्वतंन्त्र अस्तित्व नही होता, अपितु वे मूल केन्द्रीय भाव के ही पूरक होते है तथा उनमें पारस्परिक श्रुखंला रहती है । श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' का मत इस सम्बन्ध में ठीक है — ''उनकी सबसे बडी विशेषता यह है कि उन्होनें अपनी भावचारा को एक स्वाभाविक तथा निश्चित क्रम से प्रवाति होने दिया है, उसमें ज्वार—भाटे के कारण तरंगों का परिवर्तन—प्रत्यावर्तन तो होता रहा है, पर प्रवाह को अपनी सीमा में रखने वाले दोनों तट प्राय: सुरक्षित रहे है । अनेक भाव उन्ही लहरों की भाँति है, जो जल के ही विभिनन रुप है, किन्तु वास्तव में है वह जल

ही । इसी प्रकार उनके एक ही गीत में बिखरे हए अनेक भाव के ही विभिनन रुप है, उससे भिन्न नही । प्रियतम के प्रेम पर अग्रसर होती हुई कवयित्री कहती है — ''पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो थकेला ।'' इस 'टेक' मे साधक की दृढता और एक निष्ठता व्यत्रित होती है तथा भावी आशंकाओं की व्यत्रना हुई है । प्रथम 'अन्तरा' में पथ के गहन अन्धकार, द्वितीय में शूल, तृतीय में पथ की दीर्घता और चतुर्थ में भय और प्रलोभन का वर्णन करते हुए सर्वत्र आत्म—विश्वास तथा बाहय को अभिव्यत्रित किया गया है । यही गीत का मूल भाव है, जो विभिन्न रुप से पल्लवित हुवा है । इससे स्पष्ट है कि उनके गीतों मे भाषास्थिति भी है ।

संक्षिप्तता —

भाषान्विति, प्रभाव की तीव्रता तथा उसके लिए गीत की संक्षिप्तता वंछिनीय है । संक्षिप्तता रहती है । वह श्रोता या पाठक के हृदय पर त्वरित तथा सीधा प्रभाव डालती है । विस्तार से अनुभूति की अखण्डता में व्याघात उपस्थित हो जाता है । भावना के विश्वहल होने, आवेग के क्षीण होने तथा गेयता में शिथीलता आने की आशंका ही जाती है । इसी कारण संक्षिप्तता अपेक्षित है ।

म्हादेवी का गीतिकाव्य इस दृष्टि से पूर्णत: सफल है । उनके गीत अधिक से अधिक छ: पदों वाले है, किन्तु ऐसे गीतों की संख्या भी कम ही है । अधिकांश गीत चार पदों में ही समाप्त हो जाते है । एक दो लम्बे गीत भी है, किन्तु वे भी अपनी मधुरता के कारण येग है और उनमें भी प्रभावन्विति है । जहॉ 'टेक' नही है, वे गीत की अपेक्षा काव्य अधिक है ।

भावानुकूल भाषा —

गीति काव्य का सम्बन्ध स्वर—भावना से होने के कारण भाषा में भावानुकूलता एवं मार्दव अपेक्षित है । महादेवी के गीतों में कोमल भावों की व्यस्त्रना हुई है, अत: वे माधुर्य सुशोभित है । भाव की गति के अनुकूल शब्द भी गतिशील दिखाई पडते है :—

''सिहर सिहर आता सरिता उर
खुल खुल पडते—सुमन सुधा पर
मचल—मचल आते पल फिर—फिर
सुन प्रिय की पद चाप हो गई
पुलकित यह अवनी ।''

शब्दों की पुनरावृत्ति से प्रिय के आगमन के उल्लास की मधुर व्यस्त्रना की गई है । र्ह्स वर्णो के प्रयोग ने माधुर्य को द्विगुणित कर दिया है । इसी भॉति जहॉ साहस और आत्म—विश्वास है, वहॉ भाषा में भी खोज दिखाई पडता है ।:—

''दृढवती निर्माण उन्मद, यह अमरता नापते पद ।
बॉध देंगे अंक संसृति से तिमिर में स्वर्ग वेला ।।''

यहा संयुक्त वर्णो के प्रयोग से भावानुकूल खोज की सृष्टि की गई है ।

महादेवी की भाषा की यह विशेषता है कि यह संस्कृत की तत्सम शब्दावली से पूर्ण होते हुए भी मधुर, तरल, स्वाभाविक,प्रवाहमयी एवं लयानुकूल है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महादेवी का काव्य गीति—तत्व से परिपूर्ण है तथा उसमें एक प्रौढ कवयित्री तथा मधुर गीतिकार के दर्शन एक साथ होते है ।

१) साहित्यकार की आत्मा तथा अन्य निबन्ध, पृ. १२२
२) आधुनिक साहित्य, द्वितीय संस्करण, पृ. २४

३) दीपशिखा—चिन्तन के कुछ क्षण, पृ. ७
४) संघिनी—चिन्तन के क्षण, पृ. २३
५) महादेवी वर्मा — काव्य कला और जीवन दर्शन (सं.शचीरानी गुटू), पृ. ६०
६) आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियॉ, पृ. ७४—७५
७) महादेवी — काव्यकला और जीवन—दर्शन, पृ. ७३
८) गीति काव्य का विकास, पृ. ४८२
९) आधुनिक हिन्दी कविता में गीति—तत्व, पृ. २५४
१०) गीति—काव्य का विकास, पृ. ४८२, ४८३
११) गीतिकाव्य का विकास, पृ. ४८०
१२) दीपशिखा — चिन्दन के कुछ क्षण, पृ. ५७
१३) महादेवी वर्मा — काव्य कला और जीवन दर्शन, पृ. ६०